हिन्दी दिवस विशेषाँक

सितंबर 4, 2017

द ग्लोबल टाइम्स

हिन्दी भाषा के प्रति मेरा प्रेम

जर्मनी और फ्राँस में अँग्रेजी जानने वाले तो बहुत सारे मिलेंगे लेकिन शायद ही आप उनको अँग्रेजी में बात करने को करने राजी करा पाएँ। यही हाल लगभग यूरोप के बाकी देशों का है

नयन धीमान, ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल जगदीशपुर, 12 ए

लोग अकसर मुझसे पूछते हैं कि मुझे हिन्दी से इतना प्रेम क्यों है? अपने देश में ही जब लोग हिन्दी को लात मारकर अँग्रेजी भाषा में बातचीत करना अपनी शान समझते है? हिन्दी में बोलने को पिछड़ा हुआ समझा जाता है और अँग्रेजी में बोलने वाले को ज्यादा सम्मान दिया जाता है, फिर तुम क्यों हिन्दी के झंडे गाड़ने में लगे रहते हैं!

दरअसल, पहले मैं भी दूसरे लोगों की तरह ही था। हिन्दी में पढ़ाई तो जरूर की थी लेकिन जब कोई मुझे हिन्दी में लिखने को बोलता था तो नानी याद आ जाती थी। हिन्दी लिखते-लिखते मैं अँग्रेजी पर आ जाता था। हिन्दी के प्रति सच्चा प्रेम मुझे तब हुआ जब मैंने यूरोपीय देशों के लोगों और चीनी-भाषियों का उनकी भाषा के प्रति उनका प्रेम देखा। जर्मनी और फ्राँस में अँग्रेजी जानने वाले तो बहुत सारे मिलेंगे लेकिन शायद ही आप उनको अँग्रेजी में बात करने पर राजी करा पाएँ। यही हाल लगभग यूरोप के बाकी देशों का है। मैं मानता हूँ कि स्थितियाँ बदल रही है लेकिन आज भी उनको अपनी भाषा दूसरी सभी भाषाओं से ज्यादा प्यारी है।

एक फ्राँसीसी से मैंने पूछा कि तुम्हें अँग्रेजी तो आती है, फिर फ्रेंच में क्यों बात करते हो? वह बोला कि मैं फ्राँसीसी हूँ। मुझे अपने देश और संस्कृति से प्यार बहुत प्यार है इसलिए मैं फ्रेंच में बात करता हूँ। मैं अँग्रेजी का इस्तेमाल सिर्फ तभी करता हूँ जब उसकी अत्यन्त जरूरत हो। मुझे अहसास हुआ कि क्या हम हिन्दुस्तानी अपने देश या संस्कृति से प्यार नहीं करते?

एक और वाकया बताता हूँ। मैं लंदन के एक म्यूजियम में अपने मित्र के साथ टहल रहा था। एक कलाकृति पर नजर पड़ते ही मैंने अपने मित्र से कलाकृति के बारे में अँग्रेजी में पूछा। वह मित्र तो जवाब नहीं दे पाया लेकिन हमारी बगल में एक बुजुर्ग फिरंगी खड़ा था, उसने ठेठ हिन्दी में मुझे इसका जवाब दिया। मैं तो हैरान! हमने एक-दूसरे को अपना परिचय दिया। इन फिरंगी महाशय की पैदाइश हिन्दुस्तान की ही थी। और यह पता चलते ही कि मैं पूर्वी उत्तर प्रदेश से हूँ, उस फिरंगी ने बाकायदा भोजपुरी भाषा बोलना शुरू कर दिया। और हद तो तब हो गई जब उसने मुझसे ठेठ भोजपुरी में कुछ पूछा और मैं जवाब देने के लिए बगलें झाँकते हुए उसके सवाल का जवाब देने के लिए अँग्रेजी का इस्तेमाल करने लगा। उस दिन बहुत शर्म आई कि हिन्दीभाषी होते हुए भी मैं उसके सवाल का जवाब हिन्दी में नहीं दे पाया।

> लगातार उनकी अँग्रेजी बक-झक सुनकर, मैंने आखिर उनसे पूछ ही लिया कि क्या उन्हें हिन्दी बोलने में शर्म आती है। वह खींसे निपोरने लगे और मानाा कि उन्हें हिन्दी में बोलने में शर्म आती है।

हिन्दीभाषी होते हुए भी हम आखिर अपनी भाषा को छोड़ क्यों अँग्रेजी को ही अपना सब कुछ मानते हैं। कुछ दक्षिण भारतीयों का मानना है कि हिन्दी एक क्षेत्रीय भाषा है। वे हिन्दी लिख-पढ़ नहीं सकते, इसलिए अँग्रेजी बोलते हैं। मैं उनके इस तर्क से सहमत नहीं हूँ। बहरहाल, कम से कम हम उत्तर भारतीयों को तो हिन्दी को उसका पूरा सम्मान देना चाहिए। पर मैं और मेरी तरह के तमाम शिक्षित उत्तर भारतीय इस बात को गम्भीरता से नहीं लेते। एक और वाकया सुनिए मेरे हिन्दुस्तान के दौरे का । मैं दिल्ली से रुढ़की जा रहा था। ट्रेन में एक जनाब से मुलाकात हो गई। वह किसी कॉलेज के प्रोफेसर थे। उनका नाम नहीं बताऊँगा। रास्तेभर मुझसे विभिन्न विषयों पर बातचीत करते रहे। मेरे बारे में यह बात जानकर कि मैं अप्रवासी भारतीय हूँ, उन्होंने मुझसे अँग्रेजी में बात करना आरम्भ कर दिया। मैंने उनके सारे सवालों के जवाब हिन्दी में ही दिए लेकिन वह थे कि अँग्रेजी से नीचे ही नहीं उतर रहे थे।

लगातार उनकी अँग्रेजी बक-झक सुनकर, आखिरकार मैंने खीझकर आखिर उनसे पूछ ही लिया कि क्या उन्हें हिन्दी बोलने में शर्म आती है। वह खींसे निपोरने लगे और बातों ही बातों में उन्होंने यह भी मान लिया कि उन्हें हिन्दी में बोलने में शर्म आती है। अँग्रेजी में बात करना ही सभ्य और शिष्टता की निशानी है, जैसे हिन्दी में बात करना गँवारपन की निशानी हो।

मैंने उन्हें बताया कि दुनिया जहान के लोग अपनी-अपनी भाषा से प्यार करते हैं, हम भारतीय क्यों अपनी मातृभाषा में बात नहीं करते ! जब आप प्रोफेसर होकर ऐसी बात सोचते हैं तो आपके छात्रों का क्या होगा! उनके पास मेरी इस बात का कोई जवाब नहीं था। हम क्यों ऐसा करते हैं कि अच्छी अँग्रेजी बोलने वाले के पीछे लग जाते हैं और हिन्दी बोलने वाले को किनारे बैठा देते हैं।

हमारी सरकार भी हिन्दी दिवस मनाकर अपनी खानापूर्ति भर कर देती है और समझती है कि बस हो गया हिन्दी का सम्मान! हम लोग कहते हैं, यह सरकार की जिम्मेदारी है कि हिन्दी को उचित स्थान नहीं मिला, पर क्या यह हमारी गलती नहीं है कि हम हिन्दी को नहीं अपनाते। क्यों नहीं अपने बच्चों को हिन्दी में बोलने के लिए प्रोत्साहित करते।

कहीं हम सभी तो हिन्दी की इस बदहाली के लिए जिम्मेदार नहीं हैं? आपका इस बारे में क्या कहना है?

आधुनिक युग में सशक्त होती नारी

डॉ0 अमिता चौहान, चेयरपर्सन

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।
-जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद की ये पंक्तियाँ नारी के वर्चस्व की कहानी बयाँ करती हैं। प्राचीन काल से ही हमारे समाज में नारी का विशेष स्थान रहा है। हमारे पौराणिक ग्रंथों में नारी को पूजनीय तथा देवी के समान माना गया है। हमेशा हमारी यही धारणा रही है कि देव शक्तियाँ वहीं निवास करती हैं जहाँ नारी का सम्मान किया जाता है। इन प्राचीन ग्रंथों का कथन आज भी उतना महत्त्व रखता है जितना कि तब था। कोई भी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र तब तक प्रगति नहीं कर सकता जब तक वह नारी के प्रति हीनभावना से ग्रसित रहता है।

प्राचीनकाल में भारत में स्त्री को उच्च स्थान प्राप्त था। सीता, सती-सावित्री, अनसूया, गायत्री आदि अनेक भारतीय स्त्रियों के नाम आज भी बहुत आदर से लिए जाते है। तत्कालीन समाज में किसी भी विशिष्ट कार्य को करने के लिए नारी की उपस्थिति अनिवार्य होती थी। रावण वध के बाद राजा राम ने जब अश्वमेघ यज्ञ की निर्णय लिया था तो उनके गुरु वशिष्ठ ने उन्हें कहा था कि अश्वमेघ यज्ञ तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक उनकी पत्नी सीता वन से वापस न आ जाएँ। अंत में यज्ञ के लिए सोने की बनी सीता की प्रतिमूर्ति उनके साथ रखकर यज्ञ की विधि को सम्पन्न कराना पड़ा था। इसी तरह मौर्य वंश में भी चन्द्रगुप्त मौर्य की पत्नी नन्दिनी ने अपनी प्रतिष्ठा और स्वाभिमान के लिए पटरानी बनना अस्वीकार कर दिया था।

बाद में देश पर हुए अनेक आक्रमणों के पश्चात् स्त्री की दशा में बदलाव आने लगे। स्त्री का वह गौरवशाली अतीत पीछे छूटता चला गया। और अँग्रेजी शासन आते-आते उसकी दशा बहुत दयनीय हो गई। इसी के परिणाम-स्वरूप कभी सबला रही स्त्री को अबला की संज्ञा दी जाने लगी। उसे उपेक्षित और तिरस्कृत किया जाने लगा।

विदेशी आक्रमणों व उनके अत्याचारों के अलावा भारतीय समाज में आई कुरीतियाँ, व्यभिचार तथा रूढ़िवादी सोच ने भी स्त्री को कमजोर बनाया। उसके अधिकारों का हनन करते हुए उसे पितृसत्ता का आश्रित बना दिया गया। साथ ही, दहेज, बाल-विवाह एवं सती प्रथा आदि कुरीतियों ने नारी उत्पीड़न को चरम पर पहुँचा दिया। पुरुष ने अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए ग्रंथों तथा व्याख्यानों के माध्यम से उसे पूरी तरह अपनी अनुगामिनी बना दिया। अँग्रेजी शासनकाल में भी रानी रक्ष्मीबाई, चाँदबीबी आदि स्त्रियाँ अपवाद ही थीं जिन्होंने अपनी परम्पराओं आदि से ऊपर उठकर इतिहास के पन्नों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। स्वतन्त्रता संग्राम में भारतीय नारियों के योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

आज का समय परिवर्तन का समय है। भारतीय नारी की दशा में भी अभूतपूर्व परिवर्तन देखने को मिल रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात अनेक विचारकों, समाज सेवियों तथा भारत सरकार ने नारी उत्थान की ओर ध्यान दिया है, जिससे समाज एवं राष्ट्र के सभी वर्गों में स्त्री की महत्ता को उजागर करने का प्रयास किया है। इसी प्रयास के चलते आज स्त्री पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है।

> स्त्री की वर्तमान दशा में निरन्तर सुधार राष्ट्र की प्रगति का सही मापदंड है। वह दिन दूर नहीं, जब स्त्री-पुरुष के सम्मिलित प्रयास फलीभूत होंगे तथा भारत अग्रणी देशों में खड़ा होगा।

विज्ञान, तकनीक, शिक्षण, लगभग सभी क्षेत्रों में उसने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है। उसने सिद्ध कर दिया है कि शक्ति अथवा क्षमता की दृष्टि से वह पुरुषों से किसी भी तरह कमतर नहीं है। निस्संदेह स्त्री की वर्तमान दशा में निरन्तर सुधार राष्ट्र की प्रगति का द्योतक है। वह दिन दूर नहीं, जब स्त्री तथा पुरुष के सम्मिलित प्रयास फलीभूत होंगे तथा भारत विश्व के अग्रणी देशों की पंक्ति में खड़ा होगा।

यह बात हमें सर्वथा स्वीकार करनी होगी कि एक सशक्त नारी ही सशक्त समाज का निर्माण कर सकती है। वह अपने पिता के घर के साथ-साथ अपने ससुराल को भी सशक्त बनाती है। शिक्षित नारी एक पूर्ण शिक्षित और सभ्य समाज का निर्माण करने वाली होती है। उसी के हाथों से समाज और देश का निर्माण सम्भव है।

लेखक मस्तमौला होते हैं और अपनी दुनिया में रहना पसंद करते हैं

साक्षात्कार

पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित डॉ॰ ज्ञान चतुर्वेदी का नाम आज हिन्दी साहित्य में किसी परिचय का मोहताज नहीं है। वह हिन्दी साहित्य की उन जानी-मानी हस्तियों में से हैं जिन्होंने साबित किया है कि कोई भी कार्य किया जा सकता है। ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल, वसुंधरा सैक्टर 6 की, कक्षा 10 सी की अनुष्का गुप्ता ने डॉ॰ ज्ञान चतुर्वेदी से बातचीत की। प्रस्तुत हैं कुछ अंश:

जन्म: अगस्त 2, 1952, मऊरानीपुर, जिला झाँसी, उत्तर प्रदेश।
पेशा: लेखक तथा हृदय रोग विशेषज्ञ।
प्रकाशित कृतियाँ: बारामासी, मरीचिका, खामोश! नंगे हमाम में हैं, नरम यात्रा, अलग, जो घर फूँके।
सम्मान: पद्मश्री, शरद जोशी सम्मान, दिल्ली अकादमी सम्मान तथा इन्दु शर्मा साहित्य पुरस्कार।

सबसे पहले तो आप अपने बारे में बताइये डॉक्टर साहब।

मैंने ग्रेजुएशन व मेडिकल ट्रेनिंग करने के बाद 'बी. एच.ई.एल.' में 30 साल काम किया और वहाँ से सेवानिवृत्त होने के बाद अपना लेखन शुरू किया।

आपने लेखन कार्य इतने साल बाद आरम्भ किया। इसकी क्या वजह रही?

अपने निजी दायित्वों को पूरा करने के बाद मुझे यह अहसास हुआ कि सारी जिन्दगी मैंने सबके लिए काम किया। अब कुछ ऐसा किया जाए जो मुझे सुकून दे सके।

तो फिर आपने लेखन को ही क्यों चुना?

क्योंकि लिखने का शौक मुझे बचपन से ही था जिसे मैं अब सुकून से पूरा कर सकता था।

अपने परिवार के बारे में कुछ बताइए।

मेरी पत्नी और बेटी अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स), दिल्ली में डॉक्टर हैं, और बेटा दुष्यन्त इन्जीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा है।

मेडिकल बैक ग्राउंड होने पर भी साहित्यकार बने! ये सब आपने कैसे किया?

बस, लेखन को पैसा कमाने का जरिया न बनाकर उसे अपनी अभिव्यक्ति दी और इतने सालों में जीवन से जो अनुभव लिए, उन्हें पात्रों का रूप दे दिया।

इतने सारे पुरस्कार मिलने पर आप कैसा अनुभव करते हैं?

वैसा ही, जैसे बच्चा मेहनत करे और उसे पुरस्कार मिले। आपकी मेहनत को कोई नाम मिले। हालाँकि लेखक इतने मस्तमौला होते हैं कि वे अपनी दुनिया में ही रहना पसंद करते हैं, फिर भी जब कोई पुरस्कार मिलता है तो आपकी पुस्तकों को पढ़ने की लोगों में और रुचि जाग जाती है।

लेकिन आजकल हिन्दी किताबें पढ़ना आज के युवकों ने बन्द कर दिया है, इसके बारे में आप क्या कहेंगे?

मैं नवयुवकों को यही कहना चाहूँगा कि पाश्चात्य संस्कृति को अपनाओ जरूर पर, उसका अन्धानुकरण हरगिज मत करो। कहीं ऐसा न हो कि इस चक्कर में हम अपनी पहचान को खत्म कर दें। जैसे भाव आप अपनी भाषा में समझ और व्यक्त कर सकते हैं, वैसे किसी और में नहीं।

अपने अलावा किसका साहित्य आपको आकर्षित करता है?

मुझे हरिवंशराय बच्चन जी द्वारा रचित *मधुशाला* बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। जितनी बार इसको पढ़ता हूँ, हर बार नये अर्थ सामने आते हैं।

आपका बहुत-बहुत धन्यवाद! आपने हमारे लिए कीमती समय निकाला। आप वास्तव में सभी आयु वर्ग के लिए प्रेरणा हैं।

कविता

नारीवाद

ईशानी जमदग्नि, ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल, गुरुग्राम, 11 जे

अपनी मुस्कुराहट से दुनिया रौशन करती है
हर दिन, एक नयी उम्मीद जागृत करती है
उसे देखकर चाँद भी शरमा जाए, ऐसा नूर बरसाती है
और सूरज की किरणों से धरा को पुलकित करती है।

बहुत से दुखों को झेलते हुए
बिना हार माने हुए
अपने कदम बढ़ाती चली गई वह
और स्वर्ण अक्षरों में अपना नाम लिखती चली गई वह।

ना उसको रोकना तुम
ना उसको अब छूना तुम
वो तो जैसे सोने की मूरत है
जिसका सिंगार उसकी सरलता है।

वो तो जैसे एक पंछी है
जो उड़ने को आतुर है
कैद वो इस पिंजरे में
अपने आकाश की तलाश में है।

महिला सशक्तीकरण

नारी का विकास, देश का विकास

भारत में लगभग पचास प्रतिशत आबादी महिलाओं की है। भारत को पूर्णतः विकसित करने के लिए यह जरूरी है कि हम इसके इस हिस्से को सशक्त और जागरूक बनाएँ

सेजल अरोड़ा और अनुप्रीत कौर, ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल, वसुंधरा सैक्टर 1, 9 डी

महिला सशक्तिकरण को सरल भाषा में बोला जाए तो उसका अर्थ होगा वह जिससे महिलाएँ शक्तिशाली बनती हैं, अपने जीवन के फैसले खुद ले सकती हैं और अपने घर की चहारदीवार के अंदर ही नहीं, उसके बाहर भी अपनी जिन्दगी बिता सकती हैं। भारत में महिलाओं के लिए उपयुक्त स्थान घर-गृहस्थी माना जाता है और घर-परिवार का ध्यान रखना ही उनका धर्म है, ऐसी मान्यता है।

सभी रेखांकनः रविन्दर गुसाईं, जीटी नेटवर्क

प्राचीन काल की परम्पराएँ

हमारे देश में प्राचीन समय से पुरुषों को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है और उन्हें महिलाओं से श्रेष्ठ माना जाता है। न केवल हमारे देश में अपितु विश्व के कई देशों में प्राचीन काल से चले आ रहे कई गलत और पुराने चलनों की वजह से महिलाओं को न केवल उनके घर में अपितु समाज में भी दबाया जाता रहा है। उन्हें कभी भी पुरुषों की तरह हिम्मतवाली और भाग्यशाली नहीं माना जाता है।

हमारे समाज में एक सोच बहुत ज्यादा प्रभावशाली है। और वह है बिना सोचे-समझे किसी भी प्रथा को जन्म देना। भले ही फिर उससे लोगों को दुख ही क्यों न पहुँचे। ऐसी ही एक कुप्रथा का उदाहरण है- सती प्रथा। इस प्रथा के अनुसार जीवित विधवा पत्नी को मृत पति की चिता पर जिन्दा जला दिया जाता है। सती प्रथा हमारे भारत के लिए एक अभिशाप थी। इसने अनेक बेकसूर महिलाओं की बलि ले ली।

ऐसे ही, हमारे समाज में न जाने कितनी प्रथाएँ हैं जो महिलाओं से उनका सब कुछ छीन लेती हैं और उन्हें दुर्बल बना देती हैं।

महिला सशक्तिकरण की जरूरत

भारत की लगभग 50 प्रतिशत आबादी केवल महिलाओं की है। भारत को विकसित बनाने के लिए इस 50 प्रतिशत को सशक्त बनाने की जरूरत है। महिलाओं को सम्मान देने के लिए और कई वर्षों से आदर्श के रूप में उनके खिलाफ गलत कार्यों- शारीरिक और मानसिक-शोषण को रोकने का एकमात्र सहारा महिला सशक्तिकरण है। समाज में व्याप्त बुराइयों को मिटाने के लिए भारत के संविधान में उल्लिखित समानता को सुनिश्चित करने के लिए महिलाओं को सशक्त बनाना होगा।

महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए कुछ कानूनी उपायों पर पूरा अमल करना होगा।

1 एक बराबर परिश्रमिक एक्ट 1976 का सख्ती से पालन।

2 दहेज रोक अधिनियम 1961 का लागू होना।

3 अनैतिक व्यापार की रोकथाम अधिनियम 1956 आदि।

आज की नारी

आधुनिक समाज महिलाओं के अधिकारों को लेकर थोड़ा जागरूक दिखने लगा है जिसके परिणामस्वरूप बहुत सारे स्वयंसेवी समूह, एनजीओ नारी उत्थान की दिशा में कार्य करने लगे हैं। आज की नारी ज्यादा खुले विचारों की होती है और सभी आयामों में अपने अधिकारों को पाने के लिए सामाजिक बंधनों को तोड़ रही है। जी टी

स्वतन्त्र भारत की नारी

आरुषी गुप्ता, ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल वसुंधरा सैक्टर 1 9 डी

गुलामी के दौर में भारत में स्त्री को कमतर माना जाता था। उसका काम सिर्फ यह था कि वह घर की चहारदीवारी में बन्द रहेगी और घर के कार्य तथा बच्चों की देखभाल करेगी। उसका अपमान होता था तथा उसे तमाम तरह की यातनाएँ सहनी पड़ती थीं। पर्दा प्रथा, सती प्रथा, उच्च शिक्षा से दूर, बाल विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों ने भारतीय नारी को दबाकर रखा था। उन्हें न तो अपने भाव प्रगट करने की आजादी थी और न शिक्षा प्राप्त करने की।

परन्तु देश की आजादी के साथ-साथ नारी के जीवन में भी बदलाव आया। हमारे महान राजाओं और नेताओं जैसे राजा राममोहन राय आदि ने सती प्रथा, पर्दा प्रथा, अशिक्षा आदि कुरीतियों को दूर करने की कोशिश की। सरोजिनी नायडू, जिन्होंने महिलाओं को स्वतन्त्र बनाने में अपना योगदान दिया, महिलाओं के लिए एक महान उदाहरण रहीं। परिणामस्वरूप भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में बलिदान, त्याग और देश सेवा का महिलाओं ने परिचय दिया। महिलाएँ घर की जिम्मेदारियों के साथ-साथ सामाजिक व सार्वजनिक कार्यों में अपना योगदान दे रही हैं। इस कठिन राह पर चलने के बाद उनमें आज नवचेतना है तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता है। जब तक देश में नारी का सम्मान है तब तक तक देश प्रगति करता रहेगा।

शक्तिस्वरूपा नारी

जो महिला अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है या होना चाहती है उसके प्रति हमारे समाज का दृष्टिकोण नकारात्मक हो जाता है

श्रेयांस जैन, ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल वसुंधरा, सैक्टर 1, 12 ए

तेरे माथे पे ये आँचल बहुत खूब है,
इसका परचम बना लेती तो और अच्छा होता।

ये पंक्तियाँ हर उस महिला के लिए लिखी गई हैं जिसे अपनी शक्ति के होने का अहसास तो है लेकिन जब उसके अस्तित्व को ही नकारा जाए तो आँचल को परचम बनाना मुश्किल हो जाता है- विशेषकर हमारे ग्रामीण अँचलों में। महिला सशक्तीकरण की बात आज हर कोई करता है लेकिन इस शब्द का या तो अनर्थ कर दिया गया है या इसे अर्थहीन बना दिया गया है। अनर्थ इस प्रकार से कि यह शब्द आज बुद्धिजीवी वर्ग के सम्मेलनों, निबंधों और नेताओं के भाषणों का हिस्साभर बनकर रह गया है। हम महिलाओं के अधिकारों की बात तो बड़े जोर-शोर से करते हैं लेकिन जो महिला अपने प्रति और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है या होना चाहती है उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण नकारात्मक हो जाता है।

हम महिलाओं को संवेदनाहीन प्राणी समझना बन्द करना होगा और उसे अपने समकक्ष समानता देनी होगी, तब होगा सही मायने में महिला सशक्तीकरण।

उच्च पदों पर आसीन महिलाओं एवं समाज में अपना नाम बनाने वाली महिलाओं की हम तारीफ तो करते हैं लेकिन जब वैसा ही कुछ हमारे परिवार की महिला सदस्य करना चाहती है तो हम उस पर हजार प्रश्न दागते हैं, बंदिशें लगाते हैं।

आज भी महिलाओं के प्रति अपराध, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज की माँग सब कुछ ज्यों का त्यों है समाज में। आर्थिक रूप से सशक्त स्त्री, चाहे वह घरों में काम करने वाली बाई हो या किसी कम्पनी की चेयरमैन, अपनी पहचान बनाए रखने के लिए इतनी मेहनत करती है कि वह स्वयं तक को भूल जाती है। घर और बाहर में सामंजस्य बिठाने के लिए हर पल वह संघर्ष करती है क्योंकि हमारा दृष्टिकोण उनके प्रति नहीं बदला। जन सामान्य का दृष्टिकोण जब महिलाओं को एक संवेदनाहीन प्राणी समझना बन्द कर देगा और महिला को समाज में वो स्थान प्राप्त होगा कि हमें महिलाओं को आरक्षण की आवश्यकता ही न हो, तब होगा सही मायने में महिला सशक्तीकरण।

आओ आज हम सब यह प्रण करें कि सिर्फ बातों से नहीं अपितु मन, वचन और कर्म से महिला उत्थान का काम करेंगे और अपने दोहरे नजरिये को बदलेंगे। जी टी

माँ है जो मुझसे कभी खफा नहीं होती

माँ वह वटवृक्ष है जो हमारी हर समस्या को अपनी छाँव तले समेट लेती है

यशस्वी शर्मा, ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल, गुरुग्राम सैक्टर 46, 11 डी

माँ यह मात्र सम्बोधन नहीं, अपितु एक जादुई अहसास है। हमेशा हमारे साथ रहने वाला। माँ एक संस्था है। वह भावनाओं का भरा-पूरा संसार है। गहरा सुकून और सुरक्षा का अहसास है। माँ उस वटवृक्ष की तरह है जो हमारी हर समस्या को अपनी छाँव तले समेट लेता है। माँ हमें गलत राह पर चलने से रोकती है और अपने सपनों को पूरा करने के लिए सदा प्रेरित करती है। माँ अपना पूरा जीवन, अपने सारे सपने, हमारे सपनों को पूरा करने के लिए न्यौछावर कर देती है। वह हमारी सबसे बड़ी दोस्त होती है और आलोचक भी। वह माँ ही है जो पूरे धैर्य के साथ, हमारे सवालों के जवाब खोजती है, हमारे नखरे सहती है और हर संकट में हमारी ढाल बन जाती है। माँ वह वटवृक्ष है जो हमारी हर समस्या को अपनी छाँव तले समेट लेता है।

वह माँ ही है जो पूरे धैर्य के साथ, हमारे सवालों के जवाब खोजती है, हमारे नखरे सहती है और हर संकट में हमारी ढाल बन जाती है।

माँ ही है जो पूरे धैर्य के साथ, हमारे सवालों के जवाब खोजती है, हमारे नखरे सहती है और हर संकट में हमारी ढाल बन जाती है। माँ को बच्चे की प्रथम पाठशाला ऐसे ही नहीं कहा जाता। वास्तव में किसी भी व्यक्ति पर सबसे ज्यादा प्रभाव उसकी माँ का ही पड़ता है। सम्राट अशोक के जीवन में उनकी माँ धर्मा, छत्रपति शिवाजी पर उनकी माँ जीजाबाई का, महात्माँ गाँधी के व्यक्तित्व पर उनकी माँ पुतलीबाई का अनूठा उदाहरण हैं। हिन्दी फीचर फिल्म दीवार में अमिताभ बच्चन द्वारा यह प्रश्न करने पर कि तुम्हारे पास क्या है? शशी कपूर द्वारा दिया उत्तर- 'मेरे पास माँ है', आज भी जबर्दस्त हिट है। वास्तव में यह मात्र एक संवाद ही नहीं, अपितु एक विश्वास है, एक संबल है जो हमें सदा आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

मुनव्वर राण ने दो पंक्तियों की परिभाषा क्या खूब लिखी है-

'लबों पे उसके, कभी बद दुआ नहीं होती।
बस एक माँ है, जो कभी मुझसे खफा नहीं होती' जी टी

ऐतिहासिक फिल्म उमराव जान

उमराव जान का किरदार निभाने वाली अभिनेत्री रेखा को सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिला

हर्षिता कपूर
ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल
गुरुग्राम, सैक्टर 43, 9 सी

उमराव जान अदा एक चर्चित किताब है जिसे मिर्जा हादी रुस्वा ने सन 1899 में लिखा था। मिर्जा हादी रुस्वा मूलतः शायर थे। उर्दू के अलावा हिन्दी, अँग्रेजी, संस्कृत, अरबी, फारसी आदि भाषाएँ भी वह अच्छी तरह से जानते थे। उमराव जान 'अदा' उनका सबसे लाकप्रिय उपन्यास है। बकौल रुस्वा उमराव जान अदा लखनऊ की एक समकालीन तवायफ उपराव 'जान' की सच्ची आत्मकथा है जो 'अदा' तखल्लुस के साथ शायरी भी करती थी। 1981 में इस उपन्यास पर आधारित एक हिन्दी फीचर फिल्म बनी जो बहुत लोकप्रिय हुई। फिल्म में उमराव जान का किरदार रेखा ने निभाया था। इसके लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार भी मिला था। इस फिल्म के निर्देशक मुजफ्फर अली हैं। फिल्म में नसीरुद्दीन शाह, रेखा, फारूख शेख आदि ने बहुत अच्छा अभिनय किया है। उमराव जान फिल्म का पुर्ननिर्माण सन् 2006 में भी हुआ था जिसमें ऐश्वर्या राय ने उमराव जान का किरदार निभाया है।

बकौल रुस्वा उमराव जान अदा लखनऊ की एक समकालीन तवायफ उपराव 'जान' की सच्ची आत्मकथा है जो 'अदा' तखल्लुस के साथ शायरी भी करती थी।

फिल्म की पटकथा कुछ इस तरह से है। उमराव जान का सम्बन्ध लखनऊ के एक सम्मानित परिवार से था। उसे अगुवा करके एक वैश्या को बेच दिया गया। उमराव जान की साहित्य में दिलचस्पी थी और उसने कई सारी कविताएँ भी लिखीं। उसकी गलती यही थी कि वह नाचने-गाने वाली होते हुए भी एक नवाब गौहर मिर्जा से प्यार कर बैठी।

फिल्म में खय्याम की धुनों पर आशा भोंसले द्वारा गायी गजलें आज तक नहीं भुला पाए हैं। सचमुच यह एक ऐतिहासिक और मन को रोमांचित करने वाली फिल्म रही है। जी टी

लेखक परिचय/कहानी

युगनायक मुंशी प्रेमचंद

अनन्या सिंह, ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल नौएडा, 9 बी

हर साहित्यकार तत्कालीन समय की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। साथ ही, उसके व्यक्तिगत जीवन की घटनाएँ भी उसके साहित्य लेखन पर प्रभाव डालती हैं। मुंशी प्रेमचंद का निजी जीवन निरन्तर संघर्षमय रहा। विपरीत परिस्थितियों ने प्रेमचंद को जीवन गहरी सूझ-बूझ तथा जीवनदृष्टि प्रदान की।

जन्म एवं बचपन: प्रेमचंद का जन्म निम्न मध्यवर्गीय परिवार में बनारस से पाँच मील दूर लमही गाँव में शनिवार 31 जुलाई, 1880 को हुआ था। उनके पिता अजायब लाल श्रीवास्तव डाक-मुंशी थे। पिता ने पुत्र का नाम रखा 'धनपतराय' और ताऊ ने 'नवाबराय'। प्रेमचंद का बचपन गाँव में मौज-मस्ती में बीता। वह खेतों से कभी गन्ने तोड़ लाते तो कभी मटर उखाड़ लाते थे। पेड़ से आम तोड़कर खाना उनका नित्य कर्म था जिसके लिए प्राय: उनकी घर पर शिकायत होती थी। पेड़ पर निशाना लगाने में प्रेमचंद माहिर थे और गुल्ली-डंडा खेलने में कुशल।

माँ की मृत्यु तथा सौतेली का आगमन: प्रेमचंद जब आठ वर्ष के थे, उनकी माँ बीमार पड़ गई और छह महीने तक रोग-शैया पर पड़े रहने के बाद उनका देहान्त हो गया। इस प्रकार प्रेमचंद मात्र आठ वर्ष की आयु में ही माँ की ममता से वंचित हो गये। दादी के लाड़-प्यार ने उन्हें कभी माता का अभाव नहीं खलने दिया। माँ की मृत्यु के दो वर्ष बाद उनके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। इस विवाह के दो वर्ष पश्चात प्रेमचंद की दादी का भी स्वर्गवास हो गया और तब प्रेमचंद अपनी सौतेली माँ के साथ रहने के लिए विवश हो गए।

घर से विरक्ति एवं पुस्तकों का साथ: सौतेली माँ से उन्हें कभी भी सगी माँ के जैसा सजल स्नेह नहीं मिला। सौतेली माँ तथा पिता के कठोर व्यवहार ने प्रेमचंद को घर के प्रति विरक्त कर दिया। समय के साथ-साथ परिस्थितियों ने ऐसा मोड़ लिया कि प्रेमचंद के अकेलेपन की साथी पुस्तकें बन गईं।

पहला विवाह: प्रेमचंद के नाना (सौतेली माँ के पिता) ने बस्ती जिले की मेंहदवाल तहसील में रामपुर गाँव के एक जमींदार की लड़की से उनकी शादी पक्की कर दी। विवाह का सही अर्थ प्रेमचंद को शायद तब तक मालूम नहीं था लेकिन खुशी इतनी थी कि अपनी शादी का मण्डप उन्होंने स्वयं बनाया। निश्चित लगन के अनुसार उनका विवाह सम्पन्न हुआ लेकिन यह असफल रहा। वह आर्य समाज से बहुत प्रभावित रहते थे। उनका दूसरा विवाह शिवरानी देवी से हुआ था।

शिक्षा: पिता की मृत्यु के कारण प्रेमचंद उस वर्ष दसवीं की परीक्षा भी नहीं दे पाए। अगले वर्ष 1899 में उन्होंने दसवीं की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। दसवीं में द्वितीय श्रेणी मिलने के कारण बनारस के क्वींस कॉलेज में प्रवेश मिलना असंभव था और यदि प्रवेश मिल भी जाता तो फीस माफ न होती और फीस देकर पढ़ने की स्थिति प्रेमचंद की नहीं थी।

सरस्वती प्रेस, हंस तथा जागरण: बनारस में 'सरस्वती प्रेस' की स्थापना के साथ ही प्रेमचंद का वर्षों पूर्व का सपना साकार हुआ। 20 जुलाई, 1923 को सरस्वती प्रेस में उन्होंने काम शुरू किया। इस प्रेस से प्रेमचंद ने अपनी कई पुस्तकें प्रकाशित की लेकिन व्यावसायिक प्रवृत्ति न होने के कारण प्रेमचंद को कभी लाभ नहीं हुआ। इसलिए अपना प्रेस होते हुए भी उन्हें लम्बे समय तक लखनऊ में नौकरी करनी पड़ी। प्रेमचंद ने 'हंस' नामक पत्रिका का प्रकाशन सरस्वती प्रेस, बनारस से मार्च 1930 में आरम्भ किया। प्रेमचंद ने अपने जीवन में तीन सौ से भी ज्यादा कहानियाँ लिखी हैं।

प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के सबसे अधिक पढ़े जाने वाले उपन्यासों व कहानियों के लेखक हैं। इन्होंने अपनी कहानियों को भारतीय समाज की कुरीतियों, अंधविश्वासों, विडम्बनाओं का विषय बना लिया था। प्रेमचंद हिन्दी और उर्दू के महान लेखक हैं। इनकी आरम्भिक कहानियाँ आदर्शवादी थीं पर बाद में उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी हो गया था। इनकी कुछ बहुत लोकप्रिय व प्रसिद्ध कहानियाँ हैं- ईदगाह, पंच परमेश्वर, बड़े भाई साहब, ठाकुर का कुआँ आदि। प्रेमचंद सिनेमा के सबसे लोकप्रिय साहित्यकारों में से एक हैं। इनके उपन्यास शतरंज के खिलाड़ी पर फिल्म बनी थी। इनके उपन्यास निर्मला पर बना टीवी धारावाहिक भी बहुत लोकप्रिय हुआ था। प्रेमचंद की साधारण मुहावरेदार भाषा आसानी से समझ में आ जाती है और गहराई से दिल में उतर जाती है। आज भी प्रेमचंद अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से हम सबके बीच हैं। वास्तव में प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक है। इस महान युगनायक ने 8 अक्टूबर, 1936 को अपना शरीर त्याग दिया।

प्रेमचंद का रचना संसार

प्रमुख कहानियाँ: पंच परमेश्वर, गुल्ली डंडा, दो बैलों की कथा, ईदगाह, बड़े भाई साहब, पूस की रात, कफन, ठाकुर का कुँआ, सद्गति, बूढ़ी काकी, तावान, विध्वंस, दूध का दाम, मंत्र, दुनिया का सबसे अनमोल रतन, सप्त सरोज, नवनिधि, प्रेमपूर्णिमा, प्रेम-पचीसी, प्रेम-प्रतिमा, प्रेम-द्वादशी, मानसरोवार: भाग एक व दो,।

उपन्यास: असरारे मआदि उर्फ देवस्थान रहस्य, हमखुर्मा व हमसवाब, सेवासदन (1918), बाजारे-हुस्न (उर्दू), प्रेमाश्रम 1921), गोषाए-आफियत (उर्दू), रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926), निर्मला (1927), गबन (1931), कर्मभूमि (1932), गोदान (1936) तथा मंगलसूत्र, जो उनका अधूरा उपन्यास है।

नाटक: संग्राम (1923), कर्बला (1924), प्रेम की वेदी (1933),

बाल साहित्य: बाल साहित्य की कुछ कहानियाँ जो मानसरोवर में संकलित हैं मिट्ठू कुत्ते की कहानी, दो बैलों की कथा, गुल्ली-डंडा, चोरी, कजाकी, नादान दोस्त, पागल हाथी, शेर और लड़का आदि।

ऑल इंडिया रेडियो पर अमर, अमर गोस्वामी

करीना मल्होत्रा, ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल वसुंधरा सैक्टर 6, 10 सी

मुल्तान (अविभाजित भारत) पाकिस्तान के एक ब्राह्मण परिवार में 28 नवम्बर, 1945 को जन्मे अमर गोस्वामी एक वरिष्ठ पत्रकार और हिन्दी साहित्य के प्रमुख कथा लेखक थे। जन्म के दो वर्ष बाद ही उनका परिवार उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में जाकर बस गया। मिर्जापुर में अपने पैतृक घर में रहने के दौरान उन्हें सरस्वती नामक एक हिन्दी पत्रिका मिली। उसमें प्रकाशित लेखों से प्रभावित होकर उन्होंने बहुत छोटी उम्र में लेखन शुरू कर दिया था। वह स्कूल की वाद-विवाद टीम के नियमित सदस्य थे और कई वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ भी जीती थीं।

युवावस्था में ही उन्होंने एक साहित्यिक समूह, रोटरी क्लब में कविताएँ लिखनी और पढ़नी शुरू कर दी थीं। अमर गोस्वामी ने बड़े होकर, इलाहाबाद में अपनी साहित्यिक समूह, 'वैचारिका' का आयोजन किया जहाँ सारे प्रतिभागी हिन्दी लेखकों के कार्यों के बारे में चर्चा कर अपने पक्ष रखते थे।

दिल्ली आकर, उन्होंने अपनी शैली बदल ली। अब वह महानगरीय शहर में जीवन, यहाँ की समस्याओं और आम आदमी के समाज में संघर्षों के बारे में लिखते थे। 'इस दौर में हमसफर' उनके द्वारा लिखा गया एकमात्र प्रकाशित उपन्यास है। उन्होंने कई बंगाली साहित्यकारों की कृतियों का बाँग्ला से हिन्दी में अनुवाद किया है। उनके द्वारा लिखित लेखों में खूबसूरती से रचित कई लेखों में से कुछ, 'उदास रघूदास', 'बूजो बहादुर', 'अपनी अपनी दुनिया', 'कल का भरोसा' और 'सुदामा की मुक्ति' हैं। उन्होंने कई बच्चों की किताबें जैसे शेर सिंह का चश्मा, शाबाश मुन्नू आदि भी लिखी हैं।

इनकी मुत्यु 26 जून, 2012 को हुई। उनकी कहानियाँ आज भी ऑल इंडिया रेडियो पर सुनाई जाती हैं तथा उनकी कहानियों पर लघु फिल्में भी बनाई गई हैं।

कहानी संग्रह: महुए का पेड़, अरण्य में हम, धरतीपुत्र, महाबली, अपनी-अपनी दुनिया, कल का भरोसा, भूल-भुलैया, उदास, राघवदास, बूजो बहादुर, इक्कीस कहानियाँ।

बाल साहित्य: *शाबाश मन्नू* सहित, बच्चों की कहानियों की कुल सोलह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

उपन्यास: इस दौर मैं हमसफर।

अनुवाद: बाँग्ला से हिन्दी में साठ से अधिक अनूदित पुस्तकें प्रकाशित।

पुरस्कार एवं सम्मान: अहिन्दीभाषी हिन्दी लेखक पुरस्कार, प्रेमचंद पुरस्कार आदि कई सम्मान मिले हैं।

पागल हाथी

रेखांकन: रविन्दर गुसाईं, जीटी नेटवर्क

मोती राजा साहब की खास सवारी का हाथी था। यों तो वह बहुत सीधा और समझदार था, पर कभी-कभी उसका मिजाज गर्म हो जाता था और वह आपे में न रहता था। उस हालत में उसे किसी बात की सुधि न रहती, महावत का दबाव भी न मानता था। एक बार इसी पागलपन में उसने अपने महावत को मार डाला। राजा साहब ने यह खबर सुनी तो उन्हें बहुत क्रोध आया। मोती की पदवी छिन गयी। उसे राजा साहब की सवारी से निकाल दिया गया। कुलियों की तरह उसे लकड़ियाँ ढोनी पड़ती, पत्थर लादने पड़ते और शाम को वह पीपल के नीचे मोटी जंजीरों से बाँध दिया जाता। रातिब बंद हो गया। उसके सामने सूखी टहनियाँ डाल दी जाती थीं और उन्हीं को चबाकर वह भूख की आग बुझाता। जब वह अपनी इस दशा को अपनी पहली दशा से मिलाता तो वह बहुत चंचल हो जाता। वह सोचता, कहाँ मैं राजा का सबसे प्यारा हाथी था और कहाँ आज मामूली मजदूर हूँ। यह सोचकर जोर-जोर से चिंघाड़ता और उछलता। आखिर एक दिन उसे इतना जोश आया कि उसने लोहे की जंजीरें तोड़ डालीं और जंगल की तरफ भागा।

थोड़ी ही दूर पर एक नदी थी। मोती पहले उस नदी में जाकर खूब नहाया। तब वहाँ से जंगल की ओर चला। इधर राजा साहब के आदमी उसे पकड़ने के लिए दौड़े, मगर मारे डर के कोई उसके पास न जा सका। जंगल का जानवर जंगल ही में चल दिया।

जंगल में पहुँचकर अपने साथियों को ढूँढने लगा। वह कुछ दूर और आगे बढ़ा तो हाथियों ने जब उसके गले में रस्सी और पाँव में टूटी जंजीर देखी तो उससे मुँह फेर लिया। उसकी बात तक न पूछी। उनका शायद मतलब था कि तुम गुलाम तो थे ही, अब नमकहराम गुलाम हो, तुम्हारी जगह इस जंगल में नहीं है। जब तक वे आँखों से ओझल न हो गये, मोती वहीं खड़ा ताकता रहा। फिर न जाने क्या सोचकर वहाँ से भागता हुआ महल की ओर चला।

वह रास्ते ही में था कि उसने देखा कि राजा साहब शिकारियों के साथ घोड़े पर चले आ रहे हैं। वह फौरन एक बड़ी चट्टान की आड़ में छिप गया। धूप तेज थी, राजा साहब जरा दम लेने को घोड़े से उतरे। अचानक मोती आड़ से निकल पड़ा और गरजता हुआ राजा साहब की ओर दौड़ा। राजा साहब घबराकर भागे ओर एक छोटी सी झोंपड़ी में घुस गये। जरा देर बाद मोती भी पहुँचा। उसने राजा को अंदर घुसते देख लिया था। पहले तो उसने अपनी सूड़ से ऊपर का छप्पर गिरा दिया, फिर उसे पैरों से रौंदकर चूर-चूर कर डाला। भीतर राजा साहब का डर के मारे बुरा हाल था। जान बचने की कोई आशा न थी।

> मुरली था तो बालक पर हिम्मत का धनी था, कमर बाँधकर मोती को पकड़ लाने के लिए तैयार हो गया। मगर माँ ने बहुतेरा समझाया, और लोगों ने भी मना किया, मगर उसने किसी की एक न सुनी और जंगल की ओर चल दिया।

आखिर कुछ न सूझी तो वह जान पर खेलकर पीछे दीवार पर चढ़ गये, और दूसरी तरफ कूद कर भाग निकले। मोती द्वार पर खड़ा छप्पर रौंद रहा था और सोच रहा था कि दीवार कैसे गिराऊँ? आखिर उसने धक्का देकर दीवार गिरा दी। मिट्टी की दीवार पागल हाथी का धक्का क्या सहती? मगर जब राजा साहब भीतर न मिले तो उसने बाकी दीवारें भी गिरा दीं और जंगल की तरफ चला गया। घर लौटकर राजा साहब ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो आदमी मोती को जीता पकड़कर लायेगा, उसे एक हजार रुपया इनाम दिया जायेगा। कई आदमी इनाम के लालच में उसे पकड़ने जंगल गये। मगर उनमें से एक भी न लौटा। मोती के महावत का एक लड़का था। उसका नाम था मुरली। अभी वह कुल आठ-नौ बरस का था, इसलिए राजा साहब दया करके उसे और उसकी माँ को खाने-पहनने का खर्चा दिया करते थे। मुरली था तो बालक पर हिम्मत का धनी था, कमर बाँधकर मोती को पकड़ लाने के लिए तैयार हो गया। मगर माँ ने बहुतेरा समझाया, और लोगों ने भी मना किया, मगर उसने किसी की एक न सुनी और जंगल की ओर चल दिया। जंगल में गौर से इधर-उधर देखने लगा। आखिर उसने देखा कि मोती सिर झुकाये उसी पेड़ की ओर चला आ रहा है। उसकी चाल से ऐसा मालूम होता कि कि उसका मिजाज ठंडा हो गया है। ज्यों ही मोती उस पेड़ के नीचे आया, उसने पेड़ के ऊपर से पुचकारा, 'मोती!' मोती इस आवाज को पहचानता था। वहीं रुक गया और सिर उठाकर ऊपर की ओर देखने लगा। मुरली को देखकर पहचान गया। यह वही मुरली था, जिसे वह अपनी सूँड़ से उठाकर अपने मस्तक पर बिठा लेता था! 'हाँ मैंने ही इसके बाप को मार डाला है' यह सोचकर उसे बालक पर दया आयी। खुश होकर सूँड़ हिलाने लगा। मुरली उसके मन के भाव को पहचान गया। वह पेड़ से नीचे उतरा और उसकी सूँड़ को थपकियाँ देने लगा। फिर उसे बैठने का इशारा किया। मोती बैठा नहीं, मुरली को अपनी सूँड़ से उठाकर पहले ही की तरह अपने मस्तक पर बिठा लिया और राजमहल की ओर चला। मुरली जब मोती को लिए हुए राजमहल के द्वार पर पहुँचा तो सबने दाँतों तले उँगली दबाई। फिर भी किसी की हिम्मत न होती थी कि मोती के पास जाये। मुरली ने चिल्लाकर कहा, 'डरो मत, मोती बिल्कुल सीधा हो गया है, अब वह किसी से न बोलेगा।' राजा साहब भी डरते-डरते मोती के सामने आये। उन्हें अचम्भा हुआ कि पागल मोती अब गाय की तरह सीधा हो गया है। उन्होंने मुरली को एक हजार रुपया इनाम तो दिया ही, उसे अपना खास महावत बना लिया, और मोती फिर राजा साहब का सबसे प्यारा हाथी बन गया।

प्रस्तुत कहानी सुप्रसिद्ध कथाकार प्रेमचंद की रचनाओं से साभार ली गई है।

विविध

बच्चों की योग्यताः अंकों से या गुणों से?

कई बच्चे पढ़ाई में अच्छे नहीं होते परन्तु, क्या पता वे किसी और विषय, जैसे कला या संगीत में बहुत अच्छे हों, क्योंकि भगवान ने इस संसार में हर किसी को कुछ न कुछ गुण दिया ही है। इसलिए किसी को भी सिर्फ प्राप्त अंकों पर भी ध्यान नहीं देना चाहिए

काँची कश्यप
ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल, वसुंधरा-6, 9 ए

किसी भी बच्चे की क्षमता का आकलन उसके अंकों से करना क्या ठीक है? हो सकता है वह बच्चा किसी और विषय में अच्छा हो या उसका व्यावहारिक ज्ञान अच्छा हो। हमारी शिक्षा प्रणाली में मूल रूप से एक पाठ्यक्रम शामिल है जो व्यावहारिक ज्ञान या बौद्धिक क्षमता पर ध्यान न देकर नम्बर पर ध्यान देता है। किसी बच्चे का आकलन उसके अंकों से क्यों किया जाता है, रट-रटकर तो कोई भी टॉप कर सकता है भले ही उसकी बौद्धिक क्षमता शून्य क्यों न हो। अंकों के बजाय किसी भी बच्चे की क्षमता का आकलन उसके गुणों से होनी चाहिए जो बच्चे पढ़ाई में अच्छे नहीं होते, परन्तु क्या पता वे किसी कला या संगीत में बहुत अच्छे हों क्योंकि भगवान ने इस संसार में हर किसी को कोई न कोई गुण दिया ही है। इसलिए किसी को भी प्राप्त अंकों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। कभी-कभार यह भी हो सकता है कि कोई बच्चा पढ़ाई में अच्छा हो परन्तु किसी कारणवश उसे अच्छे अंक न मिले हों इसलिए हमेशा अंकों के आधार पर किसी बच्चे का आकलन नहीं करना चाहिए।

जब भारत में अँग्रेजी राज था तो उन्होंने शिक्षा का आधार पाठ्य-पुस्तकों को बना दिया जो सरासर गलत था क्योंकि उससे बच्चों के गुणों को तो कोई जान ही नहीं पाता था। हो सकता है वह बच्चा बहुत तेज हो परन्तु उसे अच्छे अंक न मिले हों। हमेशा बच्चों को अंकों के आधार पर नहीं आँकना चाहिए। अँग्रेजों के समय में कई लोगों ने उनकी इस नीति का विरोध भी किया था और उनमें से एक थे- महात्मा गाँधी। उनका कहना था कि बच्चों में गुणों तथा विशेषताओं पर ज्यादा ध्यान देना

> रट-रटकर तो कोई भी टॉप कर सकता है भले ही उसकी बौद्धिक क्षमता शून्य क्यों न हो। मार्क्स के बजाय किसी भी बच्चे की क्षमता का आकलन उसके गुणों से होना चाहिए।

चाहिए, उन्हें ऐसी चीजें सिखानी चाहिए जिनसे उनकी बौद्धिक क्षमता बढ़े तथा उनके संस्कार बढ़ें, न कि बच्चों को किताबी कीड़ा बना दें। अपनी विशेषताओं का प्रयोग करके, जीवन के हर कदम में प्रगति का अनुभव होता है परन्तु अगर अंकों पर ध्यान दिया तो शायद हम पीछे रह जाएँ। पढ़ाई भी जरूरी होती है परन्तु किसी के अंक उसके गुणों पर परदा न डालें तब तक।

सफलता पाने के लिए जीवन में किताबी ज्ञान से ज्यादा, व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। ऐसे कई उदाहरण हैं जिन्होंने पढ़ाई अधूरी छोड़ दी। यानी उन्होंने अंकों के पीछे दौड़ना छोड़ दिया फिर भी जीवन में बहुत सफल रहे। उदाहरण के तौर पर अल्बर्ट आईस्टाइन, मार्क ज्यूकबर्ग इत्यादि। इसलिए सही कहा है:

अपने हौसले के बल पर हम
अपनी प्रतिभा दिखा देंगे!
भले कोई मंच ना दे हमको
हम मंच अपना बना लेंगे।
जो कहते खुद को सितार है
जगमगा कर उनके सामने ही
चमक कर देंगे उनकी फीकी
और सूरज खुद को बना लेंगे।
अंकों की दौड़ में बिना शामिल हुए
हम चमक कर दिखा देंगे।

विलुप्त होते हमारे संस्कार

हर्ष गौतम
ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल वसुंधरा-1, 8 ए

आधुनिक समाज जिस पाश्चात्य सभ्यता की ओर अग्रसर हो रहा है, यह चिन्ता का विषय है। माता-पिता ही यदि पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करेंगे तो नई पीढ़ी कहाँ जाएगी! हम लोगों में अपने भारतीय संस्कार विलुप्त होते जा रहे हैं। माता-पिता एवं बड़ों के चरण-स्पर्श करना आजकल हमारा पिछड़ा होना दर्शाता है। परन्तु यह गलत है। जब बच्चा शुरू से ही इस परम्परा का पालन करता है तो वह बड़ों के द्वारा बताई गई बातों का भी पालन करता है।

जो भी बच्चा अपने माता-पिता व बड़ों के बताए हुए मार्ग का अनुसरण करता है वह कभी गलत मार्ग पर नहीं जा सकता। समाज में दिन-प्रतिदिन हिंसा और अपराध बढ़ने का मुख्य कारण यही है। यदि माता-पिता अपने बच्चे को सभी संस्कारों के बारे में समझाएँ तथा उसका महत्त्व उन्हें बताएँ तो समाज में बढ़ती कुरीतियों से भी छुटकारा मिल सकेगा और आने वाले समय में एक सभ्य समाज का निर्माण हो सकेगा। इससे वह स्वयं के साथ-साथ देश की उन्नति में भी भागीदारी निभा सकेगा।

समय का महत्त्व

जिस प्रकार सोने का हर कण मूल्यवान होता है, उसी प्रकार समय का भी प्रत्येक पल हमारे लिए बहुमूल्य होता है

सिया गुप्ता, ऐमिटी, इंटरनेशनल स्कूल गुरुग्राम, सैक्टर 46, 10 जी

संसार में हमारा आना एक निश्चित समय के लिए होता है। क्षणों से निर्मित जीवन क्षण-क्षण बीतता जाता है और हमारी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। ईश्वर द्वारा दिए गए इस अनमोल जीवन को हम एक पल भी बढ़ा नहीं सकते। पर यदि हम उस पल के महत्त्व को समझें और उसका सदुपयोग करें तो हम अपने जीवन को सफल एवं सार्थक बना सकते हैं। जो व्यक्ति समय के मूल्य को नहीं समझता, वह हमेशा दुःखी रहता है। अपने हर काम में वह हमेशा असफल होता चला जाता है। किसी ने सत्य ही कहा है-

'दीर्घसूत्री विनश्यति'।

अर्थात् जो इनसान अपना काम समय पर नहीं करता वह खुद-ब-खुद अपना विनाश सुनिश्चित करता है। एक बार जो समय नष्ट कर देता है, उसे बाद में पछतावे का सामना करना पड़ता है। ऐसे लोग बहुत कम हैं जो इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनका कितनाा समय आवश्यक और उपयोगी कार्यों में लगता है और कितना बेकार के कामों- जैसे हँसी-दिल्लगी, सैर-सपाटा करना में बर्बाद होता है। समय केवल उन्हीं का साथ निभाता है जो इसकी सही पहचान करके इसका सदुपयोग करने में विश्वास रखते हैं। जिस प्रकार कमान से निकला तीर कभी वापस

> जिस व्यक्ति को समय को समझदारी से व्यतीत करने की आदत छात्र जीवन से ही पड़ जाती है, वह इसे जीवनभर नहीं भूलता।

तरकश में नहीं आता, उसी प्रकार यदि एक बार समय मनुष्य के हाथ से फिसल जाए तो कभी वापस नहीं आता।

समय निरन्तर भागता रहता है। समय के इस गुण को देखकर हम यह भी कह सकते हैं कि समय पर किया गया छोटा सा कार्य भी उपयोगी है और समय बीतने पर महान कार्य करना भी व्यर्थ चला जाता है। जिस प्रकार सोने का हर कण मूल्यवान होता है, उसी प्रकार समय का भी प्रत्येक भाग बहुमूल्य होता है, जैसा कि तुलसीदास ने रामचरितमानस में कहा भी है-

'का बरखा जब कृषि सुखाने,
समय चूकि पुनि का पछिताने।'

अर्थात् कृषि के सूख जाने पर वर्षा का होना व्यर्थ है और समय के बीत जाने पर प्रायश्चित करने का कोई लाभ नहीं। इसलिए समझदारी इसी में है कि वर्तमान में हमारे हाथों में जो समय के पल हैं, हम इनका महत्त्व को समझें, इन पर नियंत्रण करें और इनका सदुपयोग करें। जिस व्यक्ति को समय को समझदारी से व्यतीत करने की आदत छात्र जीवन से ही पड़ जाती है, वह इसे जीवनभर नहीं भूलता।

'अब पछताये होत क्या,
जब चिड़िया चुग गई खेत।'

एक बार को खोया धन पुनः अर्जित हो सकता है, खोई प्रतिष्ठा पुनः मिल सकती है, बिगड़ा स्वास्थ्य उपचार से ठीक हो सकता है, पर समय रूपी रत्न हाथ से निकल जाए तो लाख ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। अतः हमें खुद पर नियंत्रण रखना चाहिए और समय का उपयोग सोच-समझकर करना चाहिए।

जाति प्रथा का शिकार

आज भी भारत में ऐसे कई कर्ण मौजूद हैं जिन्हें शिक्षा देने से केवल इसलिए इनकार कर दिया जाता है क्योंकि वे निम्न वर्ण के होते हैं

मेघा चट्टोपाध्याय
ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल वसुंधरा-1, 10 सी

'गुरुदेव!, मुझे धनुर्विद्या सीखनी है।' एक बालक ने गुरु से कहा। 'तुम्हारे पिता क्या करते हैं? क्या वह कोई क्षत्रिय है?' गुरुदेव ने पूछा। 'नहीं गुरुदेव, वह पितामह भीष्म के रथ के सारथी हैं।' 'सारथी का पुत्र सारथी होता है, तुम रथ चलाना सीखो। तुम्हारे हाथ में धनुष शोभा नहीं देगा।' यह बालक 'कर्ण' है। इसे अपना वर्ण छुपाकर, धनुर्विद्या सीखनी पड़ी क्योंकि उसे विभिन्न आचार्यों ने उसके वर्ण के आधार पर शिक्षा देने से इनकार कर दिया था।

आज भी भारत के अनेक क्षेत्रों में यह कुप्रथा व्याप्त है। ऐसे कई कर्ण आज भी मौजूद हैं जिन्हें शिक्षा देने से केवल इसलिए इनकार कर दिया जाता है क्योंकि वे निम्न वर्ण के होते हैं।

क्या शिक्षा का अधिकार उच्च वर्ण क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य वर्ण को ही है? क्या शिक्षा की देवी सरस्वती भी वर्ण-भेद के आधार पर विद्या देती हैं? क्या भगवान ने सभी मनुष्यों को सोचने के लिए जो बुद्धि दी, वह वर्ण-आधारित है? क्या सभी की रगों में समान रक्तधारा नहीं बहती? फिर किस आधार पर निम्न वर्ग के बच्चों को शिक्षा से दूर रखा जाता

> क्या शिक्षा का अधिकार उच्च वर्ण क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य वर्ण को ही है? क्या शिक्षा की देवी सरस्वती भी वर्ण-भेद के आधार पर विद्या देती हैं?

है? केवल शिक्षा ही नहीं, अनेक तरह से लोगों में वर्ण के आधार पर भेदभाव किया जाता है।

किसी भी गाँव में आज भी शूद्र मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकते। उस कुएँ से पानी नहीं ले सकते हैं जिसका प्रयोग गाँव में उच्च वर्ण के लोग करते हैं। ये लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के घर में चप्पल तक पहनकर नहीं जा सकते हैं। शूद्र के घर में जन्म लेकर एक शिशु कौन सा पाप करता है जो उसे बड़े होने पर यह सब सहन करना पड़ता है? क्या एक बच्चा अपनी इच्छा से किसी घर में जन्म लेता है? क्या उसे अपना परिवार चुनने की आजादी है? नहीं। यह सब तो भगवान के हाथ में है। तो फिर क्यों उसे समाज में व्याप्त इन कुप्रथाओं से आजादी नहीं मिलती।

हमें यह समझना चाहिए कि इस जाति प्रथा से कितने बच्चे निरुत्साहित हो जाते हैं और अंततः देश उन खूबियों वाले लोगों से वंचित रह जाता है जिनकी देश को आज आवश्यकता है, जो कदाचित उन बच्चों में थी। इस जातिप्रथा के कारण हतोत्साहित होकर वह अपनी खूबियों को समाज के समक्ष कभी प्रदर्शित नहीं कर पाते। मानवता के लिए नहीं तो कम से कम देश के हित के बारे में सोचकर तो इस कुप्रथा का पूर्णतः अंत कर देना चाहिए हमें। आइए चलें एक ऐसे समाज के निर्माण करने की दिशा में जहाँ भेदभाव नहीं, साम्यवाद हो।

कलम और तलवार

कुशा मेहता
ऐमिटी इंटरनेशनल स्कूल पीवी, 9 बी

वास्तव में कलम और तलवार दोनों को ही विशेष प्रकार का शस्त्र माना गया है। सिपाही तलवार का उपयोग कर युद्ध क्षेत्र में शत्रु पर विजय हासिल कर लेते हैं और एक लेखक केवल कलम के सिपाही की तरह साहित्य सर्जन करके लोगों के दिलों में राज करता है।

कलम और तलवार दोनों ही शक्तिशाली अस्त्र हैं। तलवार की प्रसिद्धि उसकी तेज धार के कारण है तो कलम अपनी प्रभोत्पादकता के कारण जानी जाती है। एक कलम वह काम आसानी से कर सकती है जो तलवार से भी सम्भव नहीं होता। कलम जब किसी लेखक के हाथ में होती है तो उसकी स्याही से मधुर साहित्य के साथ-साथ एक बहुत बड़ी क्रांति को जन्म दिया जा सकता है। भारत की आजादी में जो योगदान तलवार और अन्य शस्त्रों ने दिया, कलम की भूमिका को भी हम किसी रूप में कम करके नहीं आँक सकते। सिपाही के हाथ में तलवार जहाँ रक्त की नदियाँ बहाती है, वहीं एक मामूली-सी कलम से रोते हुए हजारों दुःखी चेहरों पर मुस्कुराहट फैलाई जा सकती है। तलवार केवल काट सकती है किन्तु कलम वह अस्त्र है जो काटकर जोड़ भी सकती है।